

संस्कृत कैसे सीखें?

कारक (भाग 2)

How to Learn Sanskrit?

Kaarak (Part 2)

आकृति ठाकुर¹ एवं योगेश शर्मा²

Aakriti Thakur¹ and Yogesh Sharma²

¹परियोजना सहयोगी – कलाकोश विभाग, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली

²सह आचार्य – कलाकोश विभाग, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली

aakritithakur2@gmail.com¹, yesharma2000@yahoo.co.in²

<https://doi.org/10.5281/zenodo.22860716>

जैसा कि पूर्व के लेख में प्रतिपादन किया गया है कि कारक शब्द का अर्थ क्रिया से सम्बन्ध रखने वाला है, अर्थात् क्रिया का जिसमें अन्वय हो अथवा क्रिया का जो जनक है, वह कारक कहलाता है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार, कारक छः होते हैं – कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। पूर्व के लेख में इस प्रकरण के प्रथम भाग में कारक की परिभाषा, विभक्ति, भेद एवं उनके उदाहरण तथा विशेषतः कर्ता एवं कर्म कारक आदि का वर्णन किया जा चुका है। इसी शृंखला में करण कारक (तृतीया विभक्ति), सम्प्रदान कारक (चतुर्थी विभक्ति) एवं अपादान कारक (पंचमी विभक्ति) का प्रतिपादन किया जा रहा है –

करण कारक – तृतीया विभक्ति

‘साधकतमं करणम्’ सूत्र के अनुसार, क्रिया की सिद्धि में जो अत्यन्त उपकारक हो, उसकी करण संज्ञा होती है। करण कारक की ‘कर्तृकरणयोस्तृतीया’ इस सूत्र से तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—

रामेण बाणेन हतो बालिः।

(राम द्वारा बाण से बाली मारा गया।)

यहाँ हनन कारक में अत्यन्त उपकारक बाण है। अतः उसकी करण संज्ञा हुई और उसमें तृतीया विभक्ति है। अनभिहित अर्थ में कर्ता राम में तृतीया विभक्ति है। ध्यातव्य है कि सामान्यतः वाच्य रूप में तीन प्रकार के वाक्यों का प्रयोग देखने को मिलता है।

1. **कर्ताप्रधान वाक्य** – जहाँ कर्ता मुख्य होता है और उसी के अनुसार क्रिया का प्रयोग होता है।
2. **कर्मप्रधान वाक्य** – जहाँ कर्म प्रधान होता है और कर्म के अनुसार क्रिया पद का प्रयोग होता है। इस प्रकार के वाक्यों में कर्ता अप्रधान (अनभिहित) होता है, अतः उसमें तृतीया विभक्ति होती है।
3. **भावप्रधान वाक्य** – जहाँ क्रिया की ही प्रधानता होती है।

इनसे सम्बन्धित उदाहरण निम्नलिखित हैं –

- कन्दुकेन क्रीडति। (गेंद से खेलता है।)
- दण्डेन चलति। (दण्ड के द्वारा चलता है।)
- रामेण गृहं गम्यते। (राम के द्वारा घर जाया जाता है।)
- बाणेन हन्ति। (बाण से मारता है।)

- रामेण पाठः पठितः। (राम द्वारा पाठ पढ़ा गया।)

- बालकेन हस्यते। (बालक द्वारा हँसा जाता है।)

इसी क्रम में उपपद विभक्ति का विधान प्रकृत वार्तिक 'प्रकृत्यादिभ्यः उपसंख्यानम्' से करते हैं। प्रकृत्यादिगण शब्दों से भी तृतीया कहनी चाहिए, यह वार्तिक का अर्थ है। प्रकृत्यादि गण पठित शब्द, जैसे – प्रकृतिः, प्रायः, गोत्र, सम, विषम, द्विद्रोण, सुख, दुःख आदि हैं। जैसे –

- प्रकृत्या चारुः। (स्वभाव से सुन्दर)
- प्रायेण याज्ञिकः। (अधिकतर आचार से याज्ञिक प्रतीत होता है।)
- गोत्रेण गार्ग्यः। (इसका गोत्र गार्ग्य है।)
- समेन एति। (सीधा चलता है।)
- विषमेण एति। (टेढ़ा चलता है।)
- द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। (दो द्रोण के भाव से अनाज खरीदता है।)
- सुखेन दुःखेन वा याति। (सुखपूर्वक या दुःखपूर्वक जाता है।)
- गोत्रेण काश्यपः। (गोत्र से काश्यप है।)
- नाम्ना रामोऽयम्। (इसका नाम राम है।)

तत्पश्चात् अपवर्ग का वर्णन करते हैं। अपवर्ग का अर्थ है – फलप्राप्ति। फलप्राप्ति अर्थ का बोध होने पर कालवाची एवं मार्गवाची शब्द में तृतीया विभक्ति होती है। यह 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' से होने वाली द्वितीया विभक्ति का अपवाद है। क्रिया का केवल अत्यन्त संयोग में द्वितीया और अत्यन्त संयोग होने से फलप्राप्ति होने पर तृतीया होती है। जैसे–

अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकोऽधीतः।

(दिनभर में या कोशभर में अनुवाक पढ़ लिया।)

यहाँ अध्ययन क्रिया का फल प्राप्त हो जाने से कालवाचक 'अह्नि' शब्द से तृतीया में 'अह्ना' एवं मार्गवाचक 'क्रोश' शब्द से 'क्रोशेन', यह तृतीया विभक्ति है। इसके अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं –

- दशभिर्दिनैरारोग्यं लब्धवान्।

(दस दिन से नीरोग हुआ।)

- मासम् अधीतो नायातः।

(महिने भर पढ़ा फल प्राप्त नहीं हुआ।)

कालवाची एवं मार्गवाची शब्दों के अतिरिक्त सहायक सह शब्द के प्रयोग में जो अप्रधान हो, उसमें तृतीया विभक्ति होती है। क्रिया के साथ जिसका सम्बन्ध हो, वह प्रधान और जिसका सम्बन्ध क्रिया के साथ नहीं हो, वह अप्रधान होता है। जैसे–

पुत्रेण सह आगतः पिता।

(पुत्र के साथ पिता आया)

उपर्युक्त वाक्य में आने की क्रिया के साथ पिता का सम्बन्ध होने से पिता प्रधान है और पुत्र अप्रधान। अतः 'सह' शब्द के प्रयोग में पुत्र शब्द में तृतीया विभक्ति होती है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं –

- पित्रा सह गच्छति पुत्रः।

(पिता के साथ पुत्र आता है।)

- रामेण सह मित्रं आगतम्।

(राम के साथ मित्र आया।)

- रामेण सह सीता आगच्छत्।

(राम के साथ सीता आई।)

- पित्रा सह साकं सार्धं समं वा गृहं गच्छति।

(पिता के साथ घर जाता है।)

- मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति।

(मृग मृगों के साथ चलते हैं।)

इसके अतिरिक्त जिस विकृतवाचक अङ्ग से अङ्गी में विकार उत्पन्न हो, उस विकृतवाचक अङ्ग में तृतीया विभक्ति होती है। जैसे– अक्ष्णा काणः सूत्र में अङ्ग विकार शब्द से ग्रहण से अक्षि काणम् अस्य। इसकी आँख कानी है। यहाँ तृतीया नहीं है, क्योंकि अङ्गी देवदत्त आदि में विकारबोध नहीं होता है। इसके अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं –

- पादेन खञ्जः। (पैर से लंगड़ा)

- हस्तेन लुञ्जः। (हाथ से लूला)
- पादाभ्यां पंगुः। (पैरों से पंगु)
- शिरसा खल्वाटः। (शिर से गंजा)
- पृष्ठेन कुब्जः। (पीठ से कुबड़ा)
- नेत्राभ्यां अन्धः। (नेत्रों से अन्धा)

इसी शृंखला में आगे वर्णन किया गया है कि ऐसे ज्ञान (इत्थंभूत) में जो लक्षण वाचक शब्द (जिससे ज्ञात हो कि यह ऐसा है) होते हैं, उनमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे—

जटाभिः तापसः।

(जटाओं से तपस्वी ज्ञात होता है।)

यहाँ तापस के ज्ञान में लक्षण (ज्ञापक) वाचक शब्द जटा होने से उसमें तृतीया विभक्ति होती है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी जानना चाहिए —

- गणवेषेण माणवकः। (गणवेष से माणवक ज्ञात होता है।)
- शिखया पण्डितः। (शिखा से पण्डित ज्ञात होता है।)
- कूर्चेन यवनः। (कूर्च से यवन ज्ञात होता है।)
- शिखया हिन्दुः। (शिखा से हिन्दू ज्ञात होता है।)

हेतु (कारण) अर्थ वाचक शब्द में तृतीया विभक्ति होती है। यहाँ द्रव्य आदि साधारण और निर्व्यापार साधारण द्रव्य के साथ आदि से गुण क्रिया का संग्रह है। इस प्रकार द्रव्य गुण और क्रिया के रूप में जो हेतु वाचक शब्द उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे —

- द्रव्य हेतु का उदाहरण — दण्डेन घटः।
- क्रिया हेतु का उदाहरण — पुण्येन दृष्टो हरिः।
- गुण हेतु का उदाहरण — पुण्येन ब्रह्मवर्चसम्, पुण्येन गौरवर्णः आदि।

यहाँ फल भी हेतु पद से गृहीत है। अतः अध्ययनेन वसति इत्यादि में भी तृतीया विभक्ति होती है। जब हेतुत्व अविवक्षित हो, तब कर्म के उद्देश्य से चतुर्थी भी

होती है। जैसे — अध्ययनाय वसति। (अध्ययन के लिए रहता है।)

- श्रमेण धनं विद्या वा भवति। (श्रम से धन अथवा विद्या होती है।)
- विद्यया यशो लभते। (विद्या से यश प्राप्त होता है।)

इसके उपरान्त प्रतिपादित है कि पृथक्, विना, नाना — इन पदों के प्रयोग में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है। अतः एक पक्ष में तृतीया और विकल्प पक्ष में पञ्चमी और द्वितीया विभक्ति भी होती है। जैसे—

पृथक् रामेण रामाद् रामं वा।

(राम से पृथक्)

नाना शब्द भी बिना (वर्जनच्छोड़ने) अर्थ में ही है। अतः 'नाना नार्या निष्फला लोकयात्रा।' (नारी के बिना लोकयात्रा निष्फल है।) इत्यादि प्रयोग बनता है।

सम्प्रदान कारक — चतुर्थी विभक्ति

'कर्मणा यमभिप्रैति ससंप्रदानम्', अर्थात् दान कर्म के द्वारा जो अभिप्रेत हो अर्थात् जिसको उद्देश्य करके दान आदि क्रिया की जाए, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। चतुर्थी संप्रदाने सूत्र के अनुसार जिसकी संप्रदान संज्ञा होती है, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे —

विप्राय गां ददाति।

(विप्र के लिए गाय देता है।)

यहाँ गो कर्म के द्वारा ईप्सित विप्र होने के कारण विप्र की सम्प्रदान संज्ञा होती है और उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यहाँ सम्प्रदान शब्द अन्वर्थ संज्ञक है। अन्वर्थक संज्ञक के अभाव में दान क्रिया विशेष को छोड़कर सामान्य रूप से 'दा' धातु के योग में भी चतुर्थी होती है, अतः 'रजकाय वस्त्रं ददाति।' (रजक के लिए वस्त्र देता है।) प्रयोग बनता है।

निम्नलिखित परिस्थितियों में कारक की सम्प्रदान संज्ञा एवं उसमें चतुर्थी विभक्ति हो सकती है —

उदाहरणार्थ, रुच्यर्थक (अच्छा लगना) धातु के प्रयोग में प्रीयमाण पदार्थ की सम्प्रदान संज्ञा होती है।

प्रीयमाण का अर्थ है – प्रीत्याश्रय, अर्थात् जिसको प्रिय लगे, वह प्रीयमाण होता है। उसकी सम्प्रदान संज्ञा और उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे –

हरये रोचते भक्तिः।

(हरि को भक्ति प्रिय है।)

यहाँ 'रुच्' धातु के प्रयोग में भक्तिविषयक प्रीति का आश्रय हरि है। अतः उससे सम्प्रदान संज्ञा एवं चतुर्थी विभक्ति हुई है। इस प्रसंग में प्रीयमाण कहने से 'देवदत्ताय रोचते मोदकः पथि', इस वाक्य में पथि के प्रीत्याश्रय नहीं होने से इसकी सम्प्रदान संज्ञा और उससे होने वाली चतुर्थी विभक्ति नहीं होती है। इसके अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं –

- बालकाय मोदकं रोचते। (बालक को लड्डू अच्छे लगते हैं।)
- यद् भवते रोचते। (जो आपको अच्छा लगता है।)

इसके अनन्तर ध्यान देने वाली बात है कि जिस द्रव्य का अन्य मालिक है, ऐसे द्रव्य को निश्चित समय में वापस करने की बुद्धि से लेना 'ऋण' कहलाता है। ऋण लेने वाला 'अधमर्ण' और ऋण देने वाला 'उत्तमर्ण' होता है। अतः जिससे ऋण लिया जाये, उसकी सम्प्रदान संज्ञा तथा उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे–

भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः।

(भक्त के लिए हरि मोक्ष धारण करते हैं।)

यहाँ भक्तसम्बन्धी जो मोक्ष है, उसे हरि धारण करता है। अतः भक्त यहाँ उत्तमर्ण होने से सम्प्रदान संज्ञक है और उसमें चतुर्थी होकर 'भक्ताय' प्रयोग बनता है।

इसी प्रकार, स्पृह अर्थात् ईप्सा (चाहना) स्पृह धातु के प्रयोग में जो ईप्सित पदार्थ, अर्थात् जिसकी ईप्सा हो, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। जैसे –

पुष्पेभ्यो स्पृहयति।

(पुष्पों को चाहता है।)

यहाँ स्पृह धातु के प्रयोग में ईप्सित पदार्थ पुष्प है, अतः इसकी सम्प्रदान संज्ञा और चतुर्थी विभक्ति कर पुष्पेभ्यो यह प्रयोग बना है।

नोट – स्पृह धातु के प्रयोग में सामान्य ईप्सा में ही सम्प्रदान संज्ञा होती है। प्रकर्ष (अत्यधिक) ईप्सित विवक्षा होने पर द्वितीया विभक्ति ही होती है। जैसे – पुष्पाणि स्पृहयति।

सम्प्रदान कारक की इसी शृंखला में, क्रुध् (क्रोध करना), द्रुह् (द्रोह करना), ईर्ष्य (ईर्ष्या करना), असूय (जलन करना) आदि अर्थवाचक धातुओं के प्रयोग में जिसके प्रति क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या, असूय आदि अर्थबोध करना हो, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे–

हरये क्रुध्यति द्रुह्यति ईर्ष्यति असूयति वा।

(हरि के प्रति क्रोध करता है/द्रोह करता है/ईर्ष्या करता है/असूया करता है।)

इसी प्रसंग में उपसर्ग से युक्त क्रुध् और द्रुह् धातु के प्रयोग में जिसके प्रति कोप किया जाए, उसमें द्वितीया विभक्ति होती है। यह चतुर्थी विभक्ति का अपवाद है। जैसे –

क्रूरम् अभिक्रुध्यति/अभिद्रुह्यति।

(क्रूर के प्रति क्रोध करता है/द्रोह करता है।)

आगे प्रतिपादित है कि नमः (नमस्कार), स्वस्ति (कल्याण), स्वाहा (देवता को उद्देश्य कर दिया गया दान), स्वधा (पितरों को उद्देश्य कर दिया जाने वाला दान), अलं (पर्याप्त अर्थ का वाचक), वषट् (देवतोद्देश्यक हविर्दान) – इन पदों के प्रयोग में जिसको उद्देश्य कर नमस्कारादि क्रिया की जाए, उसमें चतुर्थी होती है। जैसे–

- हरये नमः।
(हरि को नमस्कार है।)
- प्रजाभ्यः स्वस्ति।
(प्रजाओं का कल्याण हुआ।)
- अग्नये स्वाहा।
(अग्नि को आहुति दी जाती है।)
- पितृभ्यः स्वधा।
(पितरों को द्रव्य दिया जाए।)
- दैत्येभ्यो हरिः अलम्
(दैत्यों के लिए हरि समर्थ है।)

- वषट् इन्द्राय ।

(इन्द्र को हवि दिया जाता है ।)

अपादान कारक – पञ्चमी विभक्ति

ध्रुवमपायेऽपादानम् सूत्र के अनुसार, अपाय अर्थात् विश्लेष, या वियोग का अर्थ है— अलग होना । अलग होने में जो क्रिया का अनाश्रय और विभाग का आश्रय (जहाँ से अलग हो) की अपादान अवधिभूत ध्रुव अर्थात् दो के परस्पर संयोग में किसी एक के अलग होने की संज्ञा होती है । अपादाने पञ्चमी, अर्थात् जिसकी अपादान संज्ञा होती है, उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है । जैसे —

ग्रामात् आयाति ।

(ग्राम से आता है ।)

यहाँ आगमन क्रिया का अनाश्रय और विभाग का आश्रय ग्राम है, अतः ग्राम की अपादान संज्ञा और उसमें पञ्चमी विभक्ति हुई ।

पर्वतात् पततोऽश्वात् पतति ।

पर्वत से गिरते हुए घोड़े से गिरता है ।

इस वाक्य में पर्वत से 'गिरता हुआ घोड़ा' सवार के लिए ध्रुव ही माना जाता है । अतः वह भी अपादान है और घोड़े के गिरने में पर्वत ध्रुव, अवधि है, अतः पर्वत भी अपादान है ।

परस्परस्मात् मेषौ अपसरतः ।

(मेष एक दूसरे से हट रहे हैं ।)

दोनों मेष विभागजनक क्रिया का आश्रय हैं, चल ध्रुव है, तथापि एक मेष की क्रिया को लेकर दोनों का पृथक्-पृथक् अवधित्व मान लिया जाता है और परस्पर की अपादान संज्ञा हो जाती है ।

निम्नलिखित परिस्थितियों में कारक की अपादान संज्ञा एवं उसमें पञ्चमी विभक्ति हो सकती है —

अपादान कारक एवं पञ्चमी विभक्ति के प्रकरण में, जुगुप्सा (घृणा करना), विराम (रुकना/प्रवृत्त न होना), प्रमाद (आलस्य करना) आदि अर्थवाचक क्रिया के प्रयोग में जिससे घृणा, प्रवृत्त न होना या प्रमाद

किया जाए, अर्थात् जुगुप्सा आदि का जो विषय हो, उसकी अपादान संज्ञा होती है और उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है । जैसे—

- पापात् जुगुप्सते । (पाप से घृणा करता है ।)
- पापात् विरमति । (पाप से रुकता है/पाप विषय में प्रवृत्त नहीं होता है ।)
- धर्मात् प्रमाद्यति । (धर्म से प्रमाद करता है ।)

इसी प्रकार, भयार्थक एवं त्राणार्थक (रक्षार्थक) धातुओं के प्रयोग में जो भय का हेतु हो, उसकी अपादान संज्ञा होती है । त्राण का मूल भय है, अतः सूत्र में केवल भय हेतु कहने से त्राण के हेतु का भी ग्रहण हो जाता है । अतः त्राण हेतु में भी पञ्चमी विभक्ति होती है ।

- चोरात् बिभेति । (चोर से डरता है ।)
- चोरात् त्रायते । (चोर से रक्षा करता है ।)

यहाँ भय और त्राण, दोनों के हेतु चोर के होने से उसकी अपादान संज्ञा और उसमें पञ्चमी विभक्ति हुई ।

तत्पश्चात् 'परा' उपसर्गपूर्वक 'जि' धातु के प्रयोग में असह्य की अपादान संज्ञा होती है । जैसे —

अध्ययनात् पराजयते ।

(अध्ययन से खिन्न होता है ।)

इसी प्रकार, वर्जनार्थक पृथक्, विना और नाना के योग में तृतीया, पञ्चमी एवं द्वितीया विभक्तियाँ विकल्प से होती हैं । जैसे —

- पृथग् रामेण रामात् रामं वा ।
- विना रामेण रामात् रामं वा ।
- नाना रामेण रामात् रामं वा ।

इसी क्रम में, वारण का अर्थ है — प्रवृत्त होने से रोकना । वारणार्थक धातुओं के प्रयोग में वारण क्रिया के प्रति जो ईप्सित हो अर्थात् जिससे अलग किया जाए, जिसमें प्रवृत्त न होने दिया जाए, उसकी अपादान संज्ञा होती है । जैसे—

यवेभ्यो गां वारयति ।

(यवों से गो को अलग करता है ।)

यहाँ यव में प्रवृत्त होने वाले गो को यव से अलग किया जा रहा है, अतः यव की अपादान संज्ञा और उसमें पञ्चमी विभक्ति हुई है।

अग्नेर्माणवकं वारयति।

(अग्नि से वटु को रोकता है)

यहाँ वारण के प्रति ईप्सित अग्नि की अपादान संज्ञा और उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है।

अन्तर्धो अर्थात् अन्तर्ध्यान अर्थात् छिपने अर्थ में अपादान कारक की स्थिति देखी जाती है। अन्तर्धो का यहाँ अर्थ है – व्यवधान होने पर यत्कर्तृक अर्थात् अपने-आप को जिससे छिपाना चाहता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है और उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—

मातुर्निलीयते कृष्णम्।

(माता से कृष्ण छिपता है।)

इसी शृंखला में, नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करने में जो आख्याता (अध्यापयिता अथवा पढ़ाने वाला है या जिससे विद्या ग्रहण की जाती है, उसकी अपादान संज्ञा होती है। जैसे—

- उपाध्यायात् अधीते। (उपाध्याय से पढ़ता है।)
- माणवकः अध्यापकात् संस्कृतं पठति। (छात्र अध्यापक से संस्कृत पढ़ता है।)
- गुरोः व्याकरणं पठति। (गुरु से व्याकरण पढ़ता है।)

‘जायमान’ का, अर्थात् जनि (उत्पत्ति) का जो कर्ता है, उसकी जो प्रकृति अर्थात् हेतु (जिससे उत्पन्न हो) है, उसकी अपादान संज्ञा होती है। जैसे —

ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते।

(ब्रह्म से प्रजा उत्पन्न होती हैं।)

यहाँ प्रजा की उत्पत्ति में हेतु और उपादान कारण ब्रह्म है, अतः उसकी अपादान संज्ञा और पञ्चमी विभक्ति हुई है। इसके अन्य उदाहरण निम्नलिखित हैं —

- पुत्रात् प्रमोदो जायते। (पुत्र से प्रमोद उत्पन्न होता है।)

- प्रेम्णः प्रेम जायते। (प्रेम से प्रेम उत्पन्न होता है।)
- कामाद् क्रोधः जायते। (काम से क्रोध उत्पन्न होता है।)
- गोमयात् वृश्चिकः जायते। (गोबर से बिच्छू उत्पन्न होते हैं।)

इसी क्रम में ‘भुवः प्रभवः’ सूत्र के अनुसार, भवनं भूः का अर्थ है — होना, निकलना अथवा उत्पन्न होना आदि। उसका जो कर्ता है, वह प्रभाव है। प्रभाव का अर्थ है — प्रभवति अस्मात्। जिससे उत्पन्न होना, प्रकाशित होना आदि अर्थबोध हो, उसकी अपादान संज्ञा होकर उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—

हिमवतो गङ्गा प्रभवति।

(हिमालय से गंगा निकलती है।)

यहाँ प्रभवति क्रिया के प्रयोग में हिमवत् की अपादान संज्ञा और परिणामस्वरूप उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है।

इसी प्रकार, अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिक् आदि शब्दों के प्रयोग में जिससे भिन्न, बिना, दिशा आदि अर्थबोध करना हो, उसमें पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे—

- अन्यो भिन्नम् इतरो वा कृष्णात्। (कृष्ण से भिन्न।)
- आरात् वनात्। (वन के दूर या वन के समीप।)
- ऋते कृष्णात्। (कृष्ण के बिना।)
- पूर्वी ग्रामात्। (ग्राम के पूर्व का देश।)
- चैत्रात् पूर्वः फाल्गुनः। (चैत्र से पूर्व फाल्गुन आता है।)
- प्राक् प्रत्यक् वा ग्रामात्। (ग्राम से पूर्व।)
- दक्षिणा ग्रामात्। (ग्राम से दक्षिण।)
- दक्षिणा हि ग्रामात्। (ग्राम से दक्षिण।)

इस प्रकार कारक प्रकरण सम्बद्ध इस लेख में करण, सम्प्रदान एवं अपादान कारकों के स्वरूप एवं नियमों का उदाहरण सहित वर्णन किया गया है।

अग्रिम लेख में शेष कारकों पर चर्चा करते हुए उक्त प्रकरण की सम्पूर्ति की जाएगी।

अनुवाद

1. महेशः रामेण सह मन्दिरं आगच्छत् ।
(महेश राम के साथ मन्दिर आया।)
2. वृद्धा दण्डेन मार्गे चलति ।
(वृद्ध स्त्री दण्ड से मार्ग पर चलति है।)
3. भुजंगः विषमेण एति ।
(सांप टेढ़ा चलता है।)
4. गोत्रेण वात्स्यः ।
(गोत्र से वत्स है।)
5. मासम् अधीतो आयातः ।
(महिने भर पढ़ा फल प्राप्त हुआ।)
6. क्रौञ्चेण सह क्रौञ्ची सरोवरे आगता ।
(क्रौञ्च के साथ क्रौञ्ची सरोवर आयी।)
7. सूरदासः नेत्राभ्याम् अन्धः ।
(सूरदास नेत्रों से अंधे हैं।)
8. ॐ नमः शिवाय ।
(ॐ स्वरूप शिव को नमस्कार है।)
9. दुर्योधनः धर्मात् प्रमाद्यति ।
(दुर्योधन धर्म से प्रमाद करता है।)
10. दीपकः व्याघ्रात् बिभेति ।
(दीपक व्याघ्र (बाघ) से डरता है।)
11. विना रामेण रामात् रामं वा जीवनं निष्फलम् ।
(राम के बिना जीवन निष्फल है।)
12. गणेशाय मोदकं रोचते ।
(गणेश को मोदक पसन्द है।)